मानवीय मूल्य और जैन धर्म

• डॉ. (श्रीमती) शारदा स्वरूप

'दर्जनों पुलिसकर्मी बेटिकट यात्रा करते हुए पकड़े गये', 'जमीन विवाद में पुत्र ने पिता का सिर फोड़ा', 'कर्नाटक प्रांत में, मैसूर-स्थित, जैन साधु बाहुबली की विशाल मूर्ति को नक्सलियों से खतरा', 'लाखों के घोटाले में नगर-पालिका प्रमुख के प्रति अविश्वास प्रस्ताव', 'घर में घुसकर सामूहिक बलात्कार','सशस्त्र बदमाशों ने ट्रेक्टर सवारों से हजारों लूटे', 'दो प्रमुख राजनैतिक दलों के नेताओं के बीच गाली गलौच', 'एक सवारी गाड़ी में शक्तिशाली बम विस्फोट - सैकड़ों हताहत', 'जबर्दस्त हंगामें के बीच लोकसभा का अधिवेशन स्थगित' ये हैं एक प्रमुख दैनिक समाचार पत्र में हाल ही में प्रकाशित कुछ शीर्षक। इसी प्रकार की अन्य अनेकानेक घटनाएं देश भर के समाचार-पत्रों की सुर्खियों में स्थान पाती रहती है। चाहे वह भगवान बाहुबली की मूर्ति को भूमिसात् कर देने की धमकी हो अथवा राजनैतिक दलों के नेताओं की नोकझोंक, नगर पालिका में भ्रष्टाचार का आरोप, या ट्रेन में बमविस्फोट की आतंकवादी कार्यवाही, पितापुत्र का संपत्ति संबंधी विवाद अथवा किसी महिला के प्रति पाशविक दुराचरण, राह चलते नागरिकों से लूटपाट या देश की सर्वोच्च प्रतिनिधि सभा का हंगामें के कारण स्थगन इन सब के मूल में एक ही सूत्र दौड़ता है। व्यक्तिगत स्तर पर हो, सामाजिक स्तर पर अथवा राजनैतिक स्तर पर, एक सूचना इस तथ्य को लेकर स्पष्ट है, कि माननीय मूल्यों का घोर अवमूल्यन हुआ है। नैतिकता की भावना आज के मानव से कोसों दूर चली गई है। एक स्वस्थ समाज में क्या होना चाहिये और क्या हो रहा है उसमें महान् अंतर परिलक्षित हो रहा है।

समाज अस्वस्थ है। उसको उपचार की आवश्यकता है और ऐसा उपचार की जो दूरगामी, प्रभावोत्पादक और चिरस्थायी है। ऐसा उपचार धर्म द्वारा ही संभव है। धर्म का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है सामाजिक चरित्र का उत्थान। सामाजिक नैतिकता जब भी पतनोन्मुख हुई है, अमानवीय आचरण में बढोत्तरी हुई है, धर्म द्वारा ही उसे अनुशासित किया गया है।

इसमें दो मत नहीं है कि जैन धर्म अत्यंत प्राचीन होते हुए भी परम वैज्ञानिक और व्यावहारिक है। इसका दृष्टिकोण उदारतावादी है और तर्क विज्ञान सम्मत। इसी कारण इसकी प्रासंगिकता आज के अति भौतिकता से पीड़ित और गृधुता से ग्रसित वातावरण में भी समाप्त नहीं हुई है।

दुःख कदाचित् जागतिक जीवन का एक कटु सत्य है और दुःख के निराकरण का उपाय, सुख की अभिलाषा भी उतना ही शाश्वत सत्य है। परंतु दुःख से बचने के उपाय या सुखोपलब्धि के साधन मानव की सोच में है। उसके विचारने का ढंग विकृत हो गया है। वह केवल अपने को केंद्र में रखकर सोचता है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से कुटुंब ततः समाज, देश, राष्ट्र और विश्व बनते हैं। परंतु यदि मनुष्य मात्र अपने या अपने मूल परिवार के सुख ऐश्वर्य का ही ध्यान रखेगा तो समाज का क्या होगा? मनुष्य समाज का अंग है और क्रमशः विश्व का भी। आजकल जैसे संयुक्त-परिवारों का विघटन हो रहा है वैसे ही समूचा देश भी विघटन के कगार पर खड़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार में विविध प्रकार की विसंगतियां दिन प्रतिदिन पनप रही है। धनी निर्धन, ऊंचनीच, जातपात, धर्मविधर्म, आस्था अनास्था की विसंगतियां मनुष्य द्वारा स्वयं उत्पादित की गई है। ये विसंगतियां मानव दु:ख का प्रमुख कारण है और उसकी सुख की खोज में सबसे बड़ा व्यवधान। इसीलिये ऐसे धर्म की शरण में जाने की महती आवश्यकता है जिसके द्वारा इन बहुआयामी समस्याओं को समझा जा सके और निराकरणार्थ पहल भी की जा सके।

जैन धर्म में पंच महाव्रतों की स्थापना की गई है - जो मुनियों के लिए हैं - गृहस्थों द्वारा पालनीय पञ्चाणुव्रत अपेक्षाकृत कम कठोर हैं - सुगम है - साथ साथ समाज के सर्वांगीण विकास तथा कल्याण की कुंजी है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, बह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पांच अणुव्रत आज के परिप्रेक्ष्य में विशेषत: उपयोगी हैं - शर्त यह है कि हम इनको मात्र सिद्धांत मान कर न चले वरन् जीवन में कार्यरूप में परिणित करने का दृढ़ संकल्प और साहस जुटा पाएं। इन पांचों में से किसी एक को अलग करके नहीं जिया जा सकता ये अन्योंन्याश्रि है और भावना तथा व्यवहार दोनों के स्तर पर परस्पर संपृक्त भी।

एक समय था जब मनुष्य प्रकृति का दास था पर आज वह उसका स्वामी बनने का दम भरने लगा है। भौतिक विज्ञान की प्रगति से उसके नेत्र चमत्कृत हो गये हैं। इतनी तीव्र गति से ज्ञान विज्ञान का विकास हो रहा है कि एक शाखा का विशेषज्ञ भी उसकी समूची जानकारी रखने का दावा नहीं कर सकता। भौतिक उपकरणों के प्रभाव में पहले के मनुष्य ने, दु:ख अधिक भोगे थे। सुखों की प्राप्ति ही उसके परलोक की, स्वर्ग की कल्पना का आधार थी। आज वह धरती को ही स्वर्ग बना कर जीना चाहता है। पर वह सुख सुविधा के समस्त साधन जुटा कर भी सुखी नहीं हैं। वह शांति की खोज में भटक रहा है। सुख और शांति की तलाश मृगतृष्णा बन गई है। धूप से तपती बालू पर पानी के लिये भटकते हिरन को दूर पर जल की सत्ता का आभास होता है - दौड़ता हुआ वहाँ तक पहुँचता है परंतु चिलचिलाती धूप में चमकते रेत कणों के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता।

आधुनिक मनुष्य ने बहुत कुछ अंशों में प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। जल, अग्नि, वायु, प्रकाश अंधकारीय प्राकृतिक तत्वों को अपना दास बना लिया है। विज्ञान द्वारा उपार्जित शक्ति के सहारे यंत्रचलित सा जीवन व्यतीत कर रहा है- बटन दबाने मात्र से बहुत कुछ कार्य संपन्न हो जाते है - परंतु जैसा कि किसी विचारक ने कहा है -"मनुष्य ने पक्षियों की भांतिं उड़ना सीख लिया है, मछलियों की भांति तैरना सीख लिया है परंतु एक मानव की भांति जीना नहीं सीखा" विज्ञान द्वारा प्रदत्त गति और शक्ति को हमें सीमित करना है। समाजोपयोगी जीवन जीने की कला मर्यादा में है, अनुशासन में है। अनुशासनहीन व्यक्ति समाज पर बोझ होता है।

विज्ञान की प्रचुर प्रगति ने विश्व का क्षेत्र संकुचित कर दिया है। प्राविधिक सामंजस्य के संसार में मनुष्य-मनुष्य में बहुत कम अंतर रह गया है - भले ही वह प्राणी ब्रिटेन का निवासी हो या अफ्रीका का, अमरीका का, या जापान का, इसने 'सत्वेषु मैत्री' के सिद्धांत के कार्यान्वयन को नवीन आयाम प्रदान किया है। परंतु विडम्बना यह है कि देश और स्थान के अंतर की कमी हृदयों की दूरी को कम करने के स्थान पर बिवृद्ध करती परिलक्षित होती है। औपनिवेशिक शोषण का राजनैतिक रूप समाप्त प्राय है पर आर्थिक रूप से उपनिवेशवाद की जड़ें गहरी होती जा रही है। कहा जाता है कि ब्रूनी के शेख के पास अथाह धन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपत्ति है - वह विश्व का सर्वाधिक धनी व्यक्ति है। विश्व के अनेक विकसित और विकासशील देशों में कुछ परिवार अत्यधिक समृद्धशाली है। उन्होंने व्यापार पर एकाधिपत्य जमा लिया है। जिससे उस पदार्थ विशेष को वे मनमाने दामों पर क्रय विक्रय कर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। इसी प्रकार कुछ समृद्धशाली देश अपने हथियारों की खपत के लिये, कम शक्तिशाली देशों को लड़ा कर बंदरबाट की स्थिति बनाए रखने में भलाई समझते है। जिसका दुष्प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ता है। कई देशों की विपन्नता, संपन्न देशों की देन है - कृत्रिम है - स्वार्थ से प्रेरित है। अपने देश की खपत से अधिक उपज को समुद्र में बहा देना, जला देना स्वीकार है परंतु निर्धन-दुर्भिक्ष पीड़ित देशों को देना नहीं। अन्यथा सत्ता संतुलन डगमगाने लगेगा। भ्रातृत्व और मैत्री का सिद्धांत प्राचीन है परंतु सनातन है - इनकी आवश्यकता आज मानव अस्तित्व की रक्षा के लिये अधिकाधिक अनिवार्य हो गई है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि मानव स्वभाव में देवत्व तथा दानवत्व का सम्मिश्रण होता है किसी में देवत्व का अंश कम किसी में अधिक। मात्रा में अंतर आधार पर दुर्जन और सज्जन के स्वभाव का निर्धारण होता है। एक विदेशी विचारक ने बड़ी सटीक बात कही है।

में कुछ परिवार अत्यधिक समृद्धशाली है। उन्होंने व्यापार पर एकाधिपत्य जमा लिया

दानव में विश्वास छोड़ देना आधुनिक सभ्यता की महती भूल है क्योंकि वही (दानव ही) इसकी व्याख्या है। कहने का तात्पर्य है कि आधुनिक सभ्यता की विकृतियों के लिये मानव स्वभाव में दानतत्व का बाहुल्य उत्तरदायी है। अपने अंदर के दानव को यदि हमें वश में रखना है, उसके द्वारा संचालित नहीं होना है तो मनःकाय वचन तीनों द्वारा शुभ, समाजपयोगी कर्म ही अभिप्रेत हैं।

अनुशासित, मर्यादित और समाजोपयोगी जीवन जीने की कला इसी में है कि पदार्थ होते हुए भी उसके प्रति आसक्ति न हो - वास्तव में गहराई से विचारने पर यह एक घोर तपस्या से कम नहीं - जितना इसका कह देना या लिख देना सरल है उतना ही इसका पालन और अनुकरण कष्ट साध्य है। परंतु अधिक उत्पादन से समस्या का निदान संभव नही, वह संभव हो सकता है सही वितरण से। इस तथ्य को तो अर्थशास्त्री ने ही प्रतिपादित किया है। आज उपभोक्तावाद का बोलबाला है। आज धनी देश अथवा धनी व्यक्ति देश की अधिकांश उपज और धन पर सर्प की भांति कुंडली मार कर बैठ गए हैं। उपभोग का अंतहीन सिलसिला जारी है - परंतु क्या उपभोक्ता को तृप्ति का लेशमात्र भी उपलब्ध है? उत्तर नकारात्मक ही होना पड़ेगा - आवश्यकता की पूर्ति धधकती ज्वाला - सध्श है - जितनी आहुति दी जाय - समिधा-प्रेक्षवण किया जाय उतनी ही विकराल लपटें उठती रहेंगी। कषायितजिव्हा वाले व्यक्ति को जल सुस्वादु, मीठा प्रतीत होता है ऐसी ही गति उपभोगोपलब्धि से होती है। ऐसी स्थिति में, आवश्यकताओं का परिसीमन एक बहुत व्यावहारिक व सुखद उपाय है। धनी निर्धन के बीच की खाई कम होगी, उत्पादन-वितरण की आर्थिक व सामाजिक समस्या सुलझेगी साथ ही आत्मिक संतोष भी प्राप्त होगा।

आज का व्यक्ति, उसकी समस्त गतिविधियां अर्थप्रधान हो गई है। वह प्रातः उठता है तो धनोपार्जन की चिंता लेकर, दिनभर व्यस्त रहता है तो उसी में, रात्रि को शैया पर जाता है तो उसी के विषय में सोचता हुआ। अनेक व्यक्तियों को तो अर्थ-चिंता में रात्रि को निद्रा भी नहीं नसीब होती वह धनोपार्जन के नए-नए तरीके उसके अधिकारियों की कुदृष्टि से छिपाने के उपाय आदि ही सोचता रहता है। यही कारण है कि दोहरा जीवन जीने वालों की संख्या बढ़ रही है। पर हमने कभी शांत चित्त से नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारा कि 'धनवान्' का वास्तविक अभिप्राय होता क्या है? शुभधन से युक्त मात्र 'धनाढ्य' नहीं। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर 'शुभ-लाभ' पद अंकित रहता है। दीपावली के, लक्ष्मी-पूजन के, अवसर पर आपसी संबंधों के नवीनीकरण एवं दृढ़ीकरण हेतु मंगल संदेश (ग्रीटिंग कार्ड) भेजने की प्रथा का आजकल अधिक प्रचलन दिखाई पड़ने लगा है। उन संदेशों में भी 'शुभ-लाभ' का उल्लेख होता है। ऐसा 'लाभ' जो 'शुभ' है - जो शुभ कर्मों द्वारा अर्जित किया गया हो - उचित साधनों द्वारा प्राप्त किया गया हो। परंतु 'लाभ' की 'शुभता' के स्थान पर मिलावट, बेईमानी, भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हमने साधन को साध्य मान लिया है। धन जीवन को सुचारु रूप से संचालन के लिये आवश्यक है परंतु जीवन का एकमात्र ध्येय नहीं है।

मूल्यों से प्रेरित समूह को 'समाज' की संज्ञा दी जा सकती है। पर दोहरे मापदंडों में मूल्यों की चर्चा अरण्यरोदन सी प्रतीत होती है। कथनी और करनी का अंतर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। बाह्य आडंबर के युग में, व्यक्ति सामाजिक व्यवहार में सौम्य उदार तथा दयालु दिखाई पड़ता है। पुलिपिट पर खड़े होकर, समाज के ठेकेदार, देश के कर्णधार, सत्य की, ईमानदारी की देशोद्धार की दुहाई देते हैं परंतु असलियत में वे ही शीघ्र धनी बनने की लिप्सा में कुकर्म कराते है, खाद्य पदार्थों में मिलावट कराते है। राजनीति का अपराधीकरण तथा अपराधियों को राजनैतिक-प्रश्रय प्राप्ति भी इसी का एक दूसरा पहलु है।

"जिओ और जीने दो" एक चिरंतन गौरवशाली और महिमामंडित सिद्धांत है। हर प्राणी की अपनी गरिमा और महत्ता है। रंग, वस्त्र, भोजन, स्थान, देशादि तो बाह्य स्थितियां मात्र हैं। सबके प्रति उदारता, व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तरों पर समानता का एकीकरण परम आवश्यक है। परंतु अपने आग्रहों के मंडन अन्यों के खंडन की प्रवृत्ति समाज में घोर संकट का कारण बन रही है। महावीर और महात्मा द्वारा उद्घोषित तथा प्रतिपादित 'अहिंसा' के 'जप' को हमने तलवार की नोक और बंदूक की नलियों से उड़ा दिया है - 'हिंसा' को जीवन का सर्वोच्च सिद्धांत मान लिया है। जिसका विकृत रूप मारकाट, चोरी डकैती, साम्प्रदायिक दंगों, घृणा, भ्रष्टाचार और चतुर्दिक फैली अनुशासनहीनता के रूप में परिलक्षित हो रहा है। समाज की जड़ो को खोखला करते इस हिंसा के घुन को हमें दूर भगाना है - सदा सदा के लिए उससे मुक्ति पानी है - अन्यथा आने वाली पीढ़िया हमें कभी क्षमा नहीं करेगी।

'ब्रज-आश्रम'
बांस मंडी, मुरादाबाद
२४४००१

* * * * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org